Name of the Scholar : Pradeep kumar
Name of the Supervisor : Dr. Neeraj kumar
Name of the Department : Hindi
Title : **BHARAT RANG-MAHOTSAV MEIN PRADARSHIT MAULIK HINDI NATAKON KA RANGMANCHIYA ADHYAYAN (VISHESH SANDARBH 1999-2009)**

शब्द के स्तर पर भले ही रंगमंच नवागन्तुक की भूमिका में है, लेकिन अपने आरंभ से ही रंगमंच एक मानव प्रवृत्ति रहा है। यह एक तरह से मानव का आदिम सत्य है कि शताब्दियों तक मनुष्य सुविधाओं और साधनों से वंचित तो रहा है, लेकिन रंगमंच के बिना कभी नहीं। इसलिए रंगमंच का अर्थ गौरव जीवन की भांति जीवन को उदात्त बनाता रहा है। यह निर्विवाद है कि रंगमंच का जन्म अनुष्ठानमूलक गीत-नृत्य, कथा गायन अथवा विशेष अवसरों पर निकाली जानेवाली झाकियों के रूप में हुआ है। हां, यह जरूर है कि रंगमंच की वह प्रारंभिक अवस्था कैसी रही होगी, उसकी बहुत साफ तस्वीर हमारे पास नहीं है।

रंगमंच नाटक, प्रदर्शन, स्थान एवं दर्शक नामक रंग तत्त्वों से मिलकर बना है। अपने आरंभ से ही सामाजिक व्यवस्था के अनुकूल रंगमंच के इन तत्वों में परिवर्तन होता रहा है। रंगमंच की विकास यात्रा संस्कृत नाटकों से जब आगे बढती है, तब संस्कृत भाषा के अवसान के साथ-साथ संस्कृत रंगमंच का भी अवसान होता है। ऐसे में लोक रंगमंच अपना स्थान ग्रहण करता है। यह लोक रंगमंच भारत के अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग तरीकों से विकसित हुआ है। इन सबमें एक बात समान है, वह है- संगीतात्मकता की प्रधानता। आधुनिक रंगमंच की शुरुआत पश्चिमी रंगमंच से प्रभावित होने व अंग्रेजी नाटकों का क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद करके या सीधे तौर पर भारत की समस्या को केन्द्र में रखकर अंग्रेजी नाटक लिखने से हुआ है। इसी उथल-पुथल में पारसी रंगमंच का उदय होता है, जो कि मूलत: पश्चिमी रंगमंच से प्रभावित था। पश्चिम से प्रभावित यह रंगमंच हिन्दी रंग चेतना को प्रभावित करता रहा है।

रंग-महोत्सवों से एक तरफ जहां सक्रिय नाटककारों व रंगकर्मियों की रंगमंचीय गतिविधियां सामने आईं, वहीं दूसरी तरफ उसके विकास की दिशा का भी आकलन किया जा सका। जैसे 1960 से 1970 के मध्य की अवधि को भारतीय रंगमंच का पुनर्जागरण काल कहा जाता है। इस समय देश के हर प्रांत की भाषा में बड़े नाटककारों की उपस्थिति देखी गई, जैसे - मोहन राकेश, बादल सरकार, विजय तेंदुलकर, गिरीश कर्नाड, मोहित चट्टोपाध्याय, चंद्रशेखकर कांबार, मनोज मित्र, उत्पल दत्त, जी.पी. देशपांडे, महेश ऐलकुंचवार के साथ-साथ विजन भट्टाचार्य, आद्य रंगाचार्य आदि ने इस अवधि की रंगमंच की विकसनशील परंपरा को उर्वरता

प्रदान की। ऐसा भी नहीं है कि नामचीन नाटककारों व निर्देशकों के काम को ही इन महोत्सवों में जगह दी गई, बल्कि वैसे नाटककारों व निर्देशकों को भी सामने लाने की पूरी कोशिश की गई जो अपेक्षाकृत नए अथवा कम परिचित थे। इसके साथ-साथ भाषाओं की महत्ता को रेखांकित करते हुए भाषा विशेष की नाट्य मंडलियों को प्रदर्शन करने का मौका दिया गया।

सन् 1999 में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय ने पहला भारत रंग-महोत्सव का आयोजन किया। इस राष्ट्रीय रंगमंच उत्सव की शुरुआत भारत की आजादी के 50 वर्ष पूरा होने के उपलक्ष्य में की गई। रानावि को भरोसा था कि इससे भारत में नए रंगमंच का विकास होगा और एनएसडी के छात्रों का समसामयिक रंगमंचीय परिदृश्य के साथ संबंध भी स्थापित हो सकेगा। भारत रंग-महोत्सव अपने आरंभ से ही दर्शकों, रंग प्रेमियों के मध्य चर्चा का विषय रहा है। दिसम्बर-जनवरी का महीना मंडी हाउस के आस-पास विशेष चहलकदमी भरा होता है। ऐसे में, देश का वर्ष में एक बार होने वाले इस महोत्सव से रंगमंच के भूगोल की जानकारी तो मिलती है, साथ ही देश के सुदूर अंचलों में चल रही रंगमंचीय गतिविधियों से रंगकर्मियों और दर्शकों का साक्षात्कार भी होता है। यह महोत्सव उन कलाकारों के लिए वरदान साबित हुआ है, जो इस आयोजन का हिस्सा बन अपनी विशिष्ट पहचान कायम करने में सफल हुए हैं और उन्हें भारंगम से इतर भी काम करने की प्रेरणा मिलती रही है। एक अन्य स्तर पर, इस महोत्सव में भारत के विभिन्न अंचलों की संस्कृतियों की उपस्थिति होती है। इसमें विदेशी प्रस्तुतियों के शामिल किए जाने से रंगमंच की अंतरराष्ट्रीय हलचल की थोड़ी झलक के साथ भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के स्पंदनों की गूंज भी सुनने को मिल जाती है।

आरंभ में रंग-महोत्सवों का प्रगतिशील चरित्र उजागर होता है। लेकिन बाद में, इन महोत्सवों की जटिलता सांस्कृतिक स्तर पर विघटन के रूप में सामने आई है। भारत में सरकारी वित्त पोषित सरकारी, गैर सरकारी संस्थाओं की प्रस्तुतियों में धन का बेहिसाब खर्च और उसके परिणामस्वरूप चौंधियाने वाले प्रदर्शनों से एक विशेष प्रकार का रंगकर्म करने पर बल है। ऐसा करने से उन दूर-दराज के रंगकर्मियों के मन में, जिन्हें वित्तीय सहायता नहीं मिलती, उनमें निराशा के भाव का संचार होना तय है। यह ठीक वैसा ही है, जैसे पश्चिमी देश दूसरी संस्कृतियों पर अपना प्रभुत्व आर्थिक एवं तकनीकीगत शक्तियों के माध्यम से कायम करते हैं।